बिज़नेस स्टैंडर्ड
वर्ष 12 अंक 210

गिरवी शेयरों का गणित

देश के वित्तीय और शेयर बाजार नियामक गिरवी शेयरों से जुड़े ढांचे की समीक्षा करने और उसे सख्त बनाने पर काम कर रहे हैं। सख्त निगरानी और नियमन तथा खुलासों के बेहतर मानक होने से फंड जुटाने के तरीकों में सुधार होगा। फिलहाल इस क्षेत्र में अक्सर संक्रमण का खतरा रहता है क्योंकि विभिन्न वित्तीय संस्थानों में आपस में किसी न किसी तरह का संबंध रहता है।

प्रवर्तकों के गिरवी शेयरों को धनराशि जुटाने के लिए जरिया मानने की इस प्रवृत्ति की कई कमियां हैं। इससे संबंधित कंपनी के बाजार मूल्य में भारी कमी आ सकती है। इससे अल्पांश हिस्सेदार को मौद्रिक नुकसान हो सकता है। अगर कर्ज पर डिफॉल्ट की घटना होती है तो अक्सर गिरवी शेयरों की बिक्री करके भी पैसा वापस नहीं पाया जा सकता है क्योंकि शेयरों की कीमत गिर चुकी होती है। कर्जदाताओं को होने वाला नुकसान कहीं अधिक व्यापक संक्रमण का माध्यम बन सकता है जो पूरे बाजार को प्रभावित कर सकता है। अगर गिरवी रखे शेयर निजी बैंकों या गैर बैंकिंग वित्तीय कंपनियों के प्रवर्तकों के हुए तो जोखिम और अधिक बढ़ जाता है। इन कंपनियों की होल्डिंग का ढांचा अक्सर अस्पष्ट रहता है जो समूह के कुल जोखिम के आकलन को मुश्किल बनाता है। बैंक जमा लेने वाले संस्थान होते हैं और शेयरों के बाजार मूल्य में आई गिरावट उनकी कर्ज देने या उधारी करने की क्षमता को प्रभावित करती है। इस व्यवहार ने वित्तीय क्षेत्र को प्रभावित किया है। इनमें बैंक, डेट म्युचुअल फंड और गैर बैंकिंग वित्तीय कंपनियां सभी शामिल हैं।

एक सवाल यह भी है कि प्रवर्तक शेयर गिरवी रखते क्यों हैं? ऐसा अक्सर व्यक्तिगत जरूरतों के लिए धन जुटाने के क्रम में किया जाता है और यह कंपनी के लिए अच्छा संकेत नहीं होता। एक स्वस्थ सूचीबद्ध कारोबार को धन जुटाने के लिए शेयर गिरवी रखने की आवश्यकता नहीं पड़ती। एक प्रवर्तक जो शेयर गिरवी रखता है, वह अक्सर प्राय: छद्म कंपनियों की सहायता से या शेयर कीमतों में छेड़छाड़ करके पैसे को वापस लाने की जुगत में रहता है। इतना ही नहीं, जैसा कि ट्रैक रिकॉर्ड बताता है, प्रवर्तकों के मन में डिफॉल्ट कर जाने को लेकर भी कोई खास हिचक नहीं रहती। खुलासे के मानकों को अक्सर छद्म कंपनियों का इस्तेमाल करके किनारे लगा दिया जाता है।

इसके व्यापक निहितार्थ हैं जिसके चलते भारतीय प्रतिभूति एवं विनिमय बोर्ड, रिजर्व बैंक, बीमा नियामक तथा पेंशन फंड नियामक एवं विकास प्राधिकार को साथ मिलकर इसमें कदाचार तथा डिफॉल्ट के तमाम पहलुओं पर विचार करना चाहिए। यह सुनिश्चित करने की आवश्यकता है कि समूचे ऋण जोखिम को पर्याप्त ढंग से संतुलित किया जाए। यानी इस बात की समीक्षा की जानी चाहिए कि समूह का कुल बकाया ऋण कितना है और व्यक्तिगत रूप से प्रवर्तकों की क्या स्थिति है। इस मामले में एकल लेनदेन पर ध्यान देने से बात नहीं बनेगी। आरबीआई का मानक है कि शेयरों का बाजार मूल्य उधार ली गई राशि से कम से कम दोगुना होना चाहिए। व्यवहार में इस मानक की अक्सर अनदेखी होती है और प्रवर्तक ऋण जोखिम कम बताने की तरकीब भिड़ाते हैं। इतना ही नहीं आरबीआई के मानक केवल बैंकों और एनबीएफसी पर लागू होते हैं जबकि ऐसे सौदों में प्राय: म्युचुअल फंड शामिल होते हैं। जानकारी के मुताबिक सेबी ने यह प्रस्ताव रखा है कि गिरवी मानक को बढ़ाकर कुल जोखिम का चार गुना किया जाना चाहिए। इस पर गंभीरतापूर्वक विचार किया जाना चाहिए। उधार लिए गए फंड का क्या उपयोग हो रहा है इस पर भी ध्यान होना चाहिए। म्युचुअल फंड को ऐसे लेनदेन में अपने जोखिम की सीमा तय करनी चाहिए। सामान्य तौर किसी कंपनी द्वारा ऋण के समक्ष गिरवी रखे गए शेयरों का जवाबदेही भरा इस्तेमाल नहीं माना जाता। चूंकि यह सामान्य व्यवहार है इसलिए जरूरी है कि नियामक ऐसे लेनदेन के ढांचे को सख्त बनाएं।

अजय मोहंती

सावरकर पर कांग्रेस की दुविधा

वीर सावरकर को लेकर कांग्रेस की दुविधा ने एक बार फिर राष्ट्रवाद को लेकर उसकी भ्रामक समझ को उजागर किया है।

सावरकर को भारत रत्न देने की मांग से जुड़े ताजा विवाद में सबसे दिलचस्प है कांग्रेस पार्टी की बदहवासी। कांग्रेस द्वारा सावरकर को नाजी बताने, घृणास्पद धर्मांध करार देने से लेकर गांधी हत्या का वह षडयंत्रकारी तक कहा गया जो तकनीकी आधार पर बरी हो गया। दूसरी ओर मनमोहन सिंह ने कहा,'हम सावरकर जी का सम्मान करते हैं लेकिन उनकी विचारधारा से सहमत नहीं हैं।' यानी कांग्रेस को पता ही नहीं है कि इस संवेदनशील मुद्दे पर उसकी पार्टी लाइन क्या होनी चाहिए। खासतौर पर ऐसे समय जब महाराष्ट्र विधानसभा चुनाव का प्रचार अभियान चल रहा है। मनमोहन सिंह की सतर्क लेकिन समझदारी भरी टिप्पणी के एक दिन बाद ही पार्टी ने खुद को इससे दूर करने का प्रयास किया। इस काम के लिए प्रवक्ता रणदीप सिंह सुरजेवाला को नियुक्त किया गया लेकिन वह हताश और दयनीय नजर आए। ऐसा इसलिए क्योंकि सिंह का बयान एकदम स्पष्ट था। उन्होंने जो कुछ कहा, उनकी पार्टी शुरुआत से ऐसा मत रख सकती थी। तब उसे इस तरह आत्मघाती आगा-पीछा नहीं करना पड़ता। खासतौर पर तब जबकि सावरकर के समर्थक इंदिरा गांधी द्वारा सन 1970 में सावरकर के सम्मान में जारी डाक टिकट और बोले गए (जो सतर्कतापूर्वक चुने गए) और लिखे गए वाक्य सामने रख रहे हैं। यह भी कहा जा रहा है कि गांधी ने सावरकर के जीवन पर वृत्तचित्र बनवाया था और उनकी स्मृति में बने कोष को उस समय 11,000 रुपये दिए थे जो अब 5 लाख रुपये के बराबर हैं। प्रश्न यह है कि कांग्रेस अपने मौजूदा रुख का तालमेल इंदिरा गांधी के रुख से कैसे मिलाती है?

इंदिरा गांधी पीवी नरसिंह राव नहीं थीं जिन्हें कांग्रेस ने उनकी नरम धर्मनिरपेक्षता के कारण किनारे कर दिया और भुला दिया। कांग्रेस के भीतर पुरानी कट्टर धर्मनिरपेक्षता की वापसी की मांग अवश्य उठी। इंदिरा गांधी अलग हैं। कांग्रेस में कोई उनकी धर्मनिरपेक्षता पर हिंदुत्व को लेकर नरमी या किसी अन्य प्रकार का इल्जाम नहीं लगा सकता। उनकी सख्ती के उदाहरण हमारे इतिहास और भूगोल में देखे जा सकते हैं। आपातकाल और बांग्लादेश का गठन इसकी बानगी हैं। यह बात सभी जानते हैं लेकिन मौजूदा संदर्भ में इसे दोहराना आवश्यक है कि आपातकाल में उन्होंने जिन लोगों को पकड़ा था उनमें से 60 से 70 प्रतिशत आरएसएस और जनसंघ से थे। इंदिरा गांधी के हृदय में इनके लिए कोई नरमी नहीं थी।

राष्ट्र की बात

शेखर गुप्ता

सच तो यह है कि इंदिरा गांधी अपने वारिसों की तुलना में वैचारिक से अधिक राजनीतिक थीं। इतिहासकार सावरकर के मामले में उनके रुख को समझने के लिए और प्रमाण चाहेंगे लेकिन मैं यह अनुमान लगाता हूं कि चूंकि वह आरएसएस और जनसंघ को बिल्कुल नापसंद करती थीं, इसलिए नहीं चाहती थीं कि आजादी की लड़ाई में किसी तरह का योगदान करने वाले व्यक्ति को वे अपने पाले में ले जा सकें। वह हमेशा आरएसएस पर यह आरोप लगाती थीं कि उसने आजादी की लड़ाई में कोई योगदान नहीं दिया और वह अंग्रेजों के साथ मिला रहा। सावरकर आरएसएस के करीबी ऐसे व्यक्ति थे जो तमाम कमियों के बावजूद स्वतंत्रता आंदोलन में भूमिका रखते थे। इंदिरा गांधी उन्हें आरएसएस के पाले में नहीं जाने देना चाहती थी। उनकी सोच को बेहतर ढंग से समझने के लिए यह देखना होगा कि मोदी और शाह की भाजपा कांग्रेस की पुरानी विभूतियों को लेकर कैसा रुख अपना रही है। इससे पहले हम इसी स्तंभ में चर्चा कर चुके हैं कि कैसे आरएसएस और भाजपा के पास स्वतंत्रता संग्राम के अपने नायक नहीं हैं। बल्कि उसके पास भगत सिंह और सुभाष चंद्र बोस जैसे गैर कांग्रेसी नायक भी नहीं हैं। यही कारण है उसे कांग्रेस से नेताओं का 'आयात' करना पड़ रहा है।

गांधी-नेहरू परिवार के अलावा (हालांकि मेनका और वरुण गांधी उनके पास हैं) वे हर किसी को अपने साथ करने को आतुर हैं। सरदार पटेल को तो बहुत पहले अपना लिया गया था लेकिन यह सरकार उन्हें भारतीय गणराज्य के संस्थापक के रूप में नेहरू से बड़ा कद देने का प्रयास कर रही है। यह बात अलग है कि पटेल आरएसएस को पसंद नहीं करते थे और महात्मा गांधी की हत्या के बाद उन्होंने इस पर प्रतिबंध भी लगाया था। आरएसएस के बारे में उनके विचार नकारात्मक थे लेकिन चूंकि नेहरू के साथ उनके मतभेद गहरे थे इसलिए भाजपा ने कांग्रेस से उन्हें छीन लिया। अगला नंबर लाल बहादुर शास्त्री का था। अन्य पुराने कांग्रेसियों में मदन मोहन मालवीय जैसे नेताओं के कट्टर हिंदू होने के कारण उनका चयन आसान था। यह सब बीते तीन दशक में यानी इंदिरा के बाद के दौर में हुआ है। ये तीन दशक एक अन्य रुझान के लिए चर्चित रहे। कांग्रेस ने तेजी से वाम वैचारिकी को अपनाया है। यह सही है कि पार्टी हमेशा से वाम मध्यमार्गी सोच की रही है। इंदिरा गांधी ने समाजवाद का इस्तेमाल राजनीतिक हथियार के रूप में किया, भले ही वह अर्थव्यवस्था के लिए नुकसानदेह था।

उन्होंने लोकलुभावन समाजवादी आर्थिक विचारों का प्रयोग किया लेकिन उन्हें कभी अपनी राजनीति पर हावी नहीं होने दिया। उन्होंने अपनी हिंदू पहचान को कभी नहीं त्यागा और न ही रुद्राक्ष की माला, पूजा, साधुओं और तांत्रिकों जैसे धार्मिक प्रतीकों से दूरी बनाई। किसी क्रांतिकारी दरबारी ने इस पर सवाल नहीं उठाया। यह आज की तरह नहीं है जब राजनीतिक-बौद्धिक वाम नेता राहुल गांधी की मंदिर यात्राओं पर सवाल उठाते हैं और सावरकर पर मनमोहन के नजरिये को नरम हिंदुत्व के समक्ष हथियार डालना कहते हैं। उन्हें इस कड़वी सच्चाई को मानना चाहिए कि इंदिरा गांधी ने सावरकर को शत्रु या आतंकी नहीं माना। उन्हें राजनीति की समझ थी। वह किसी स्वतंत्रता सेनानी को आरएसएस के पाले में नहीं जाने देना चाहती थीं।

आरएसएस के बौद्धिक और ऑर्गनाइजर के पूर्व संपादक शेषाद्रि चारी के मुताबिक इंदिरा गांधी ने कभी जनसंघ या भाजपा को हिंदू दल नहीं कहा। वह देश की बहुसंख्यक आस्था को अपने सबसे बड़े प्रतिद्वंद्वी के हवाले नहीं करना चाहती थीं। वह इसे एक 'बनिया' पार्टी कहकर खारिज करती रहीं।

इस अंतर को समझिए। अगर आप उन्हें हिंदू कहते हैं तो एक बड़ा राजनीतिक वर्ग इसमें शामिल है जबकि बनिया एक छोटा और चुनावी रूप से हाशिये पर रखने जैसा समूह है। चूंकि वह अमीरों, मुनाफा कमाने वालों और महाजनों का प्रतिनिधित्व करता है, इसलिए खासतौर पर ग्रामीण इलाकों में ज्यादा लोग उनसे जुड़ाव महसूस नहीं करते। चारी के मुताबिक सोनिया गांधी के नेतृत्व में कांग्रेस ने इसे बनियों के बजाय हिंदुत्व से लड़ाई में बदल दिया। इंदिरा गांधी के पहले और बाद की कांग्रेस में यही अंतर है। उन्होंने वाम बौद्धिकों को अपना दरबारी बनाए रखा और उनके विचारों को अपनी राजनीति में प्रयोग किया। सोनिया गांधी के बाद कांग्रेस ने उन वाम बौद्धिकों को अपनी राजनीति पर हावी हो जाने दिया।

आपको प्रमाण चाहिए: पार्टी का 2019 का घोषणा पत्र देखिए जिसमें राजद्रोह का कानून हटाने, सशस्त्र बल विशेष अधिकार अधिनियम को हटाने और कश्मीर में सैनिक कम करने का जिक्र है। अगर कोई इंदिरा को ये सुझाव देता तो वह तुरंत से खारिज कर देतीं। या शायद वह पूछतीं कि चुनाव भारत में हो रहे हैं या जेएनयू में। नेहरू समाजवादी थे और उनकी अपनी बौद्धिक छवि थी। उन्हें किसी की मदद नहीं चाहिए थी। दरअसल स्वर्गीय जयपाल रेड्डी अक्सर कहते थे कि यदि महात्मा गांधी का प्रभाव न होता तो नेहरू एक हद तक मार्क्सवादी होते। इंदिरा में बौद्धिकता नहीं थी इसलिए उन्हें अपनी लोकप्रियता के लिए बाहरी लोगों की आवश्यकता पड़ी। परंतु उनकी राजनीति पूरी तरह उनकी थी। उन्होंने राष्ट्रवाद और समाजवाद का घातक मिश्रण तैयार किया। इसे कोई बनिया पार्टी नहीं हरा सकती थी। अब यह गणित उलट चुका है। उनके वारिसों का सामना मोदी-शाह की भाजपा से है जिसके पास राष्ट्रवाद, धर्म और समाजवाद का कहीं अधिक घातक राजनीतिक त्रिशूल है। सोनिया-राहुल की कांग्रेस क्या प्रतिक्रिया देगी इसे सबरीमला, तीन तलाक और अयोध्या मामले पर पार्टी की दुविधाग्रस्त प्रतिक्रिया से समझा जा सकता है। अगर वे वाम समाजवाद पर जोर देते रहे और राष्ट्रवाद और धर्म-संस्कृति का मुद्दा भाजपा में हाथ में रहा तो उन्हें लोकसभा में 52 सीट मिलना भी सौभाग्य माना जाना चाहिए। डॉ. मनमोहन सिंह जैसा गैर पेशेवर राजनेता ही इसे समझता है लेकिन उनकी पार्टी उनकी बात सुनती ही नहीं।

देसी भारतीय गाय का दूध विदेशी गायों से बेहतर

क्या स्वदेशी भारतीय गायों का दूध विदेशी नस्ल वाली गायों से बेहतर है? अगर दूध की गुणवत्ता और उसमें निहित प्रोटीन तत्त्वों के संयोजन की बात करें तो इसका जवाब 'हां' है। उभरता वैश्विक रुझान दूध को उसके बीटा-केसीन की प्रकृति के आधार पर ए1 और ए2 श्रेणियों में वर्गीकरण का है। कुल दुग्ध प्रोटीन में बीटा-केसीन की मात्रा 30-35 फीसदी होती है। ए2 दूध को आम तौर पर ए1 पर वरीयता दी जाती है क्योंकि यह मां के दूध से मेल खाता है। भारतीय नस्ल वाली गाय का दूध भी इसी श्रेणी से संबंधित है।

बीटा-केसीन में ए1 और ए2 दूधों में समान रूप से पाए जाने वाले 209 अमिनो अम्लों की एक शृंखला होती है। लेकिन 67वें स्थान पर स्थित अमिनो अम्ल दो मामलों में अलग होता है। जहां ए2 बीटा-केसीन का इंसानी दूध की तरह इस स्थिति में उपयोगी प्रोलाइन होता है वहीं ए1 में हिस्टीडाइन होता है जो पाचन के दौरान अस्वास्थ्यकर पेप्टाइड बीसीएम-7 में टूटने की प्रवृत्ति रखता है। आम तौर पर 'दूध का शैतान' कहा जाने वाला यह पेप्टाइड मॉर्फीन से समानता रखता है जो कि मस्तिष्क के लिए बेहद नुकसानदायक है।

भारत समेत अधिकांश एशियाई एवं अफ्रीकी देशों में विकसित पशु नस्लों से निकलने वाला दूध मूल रूप से ए2 किस्म का ही है। इसके उलट यूरोपीय (फ्रांस को छोड़कर), ऑस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड और अमेरिका में विकसित नस्लों के मवेशी सामान्य तौर पर ए1 दूध ही पैदा करते हैं। कुछ मामलों में उनके दूध में ए1 और ए2 बीटा-केसीन का मिश्रण होता है लेकिन मोटे तौर पर यह ए1 श्रेणी वाला दूध ही होता है।

कुछ अध्ययनों से पता चला है कि बचपन में ए1 दूध के सेवन का संबंध टाइप-1 डायबिटीज, दिल की बीमारी, पाचन अनियमितता और ऑटिज्म जैसी बीमारियों से जुड़ा हो सकता है। ऑटिज्म एक मानसिक अवस्था है जिसमें लोग सामाजिक गतिविधियों का हिस्सा होने से बचते हैं और बार-बार एक ही आचरण दोहराते रहते हैं। लेकिन ए2 श्रेणी वाले दूध के सेवन से इस तरह की बीमारियां होने का कोई नाता सामने नहीं आया है। सामान्य दूध को लेकर असहज लोग भी ए2 दूध का सेवन कर सकते हैं।

असल में, गाय ए2 दूध का अकेला जरिया नहीं है। भैंस, बकरी, भेड़, याक और ऊंट जैसे दूसरे दुधारू पशुओं से भी ए2 दूध मिलता है। यही वजह है कि इन मवेशियों के दूध को बाजार में खास स्थान मिलता है। कूबड़ वाले कुछ पशुओं, मसलन ऊंटनी से निकले ए2 दूध की कुछ किस्में ऑटिज्म पर काबू पाने और उसके लक्षणों को पूरी तरह दूर करने के लिए भी मुफीद मानी जाती हैं। इस मान्यता के कारण भारत समेत कई देशों में ऊंटनी के दूध की मांग एवं मूल्य दोनों में काफी तेजी आई है। लेकिन इनमें से अधिकांश दावों की पुष्टि के लिए अभी और अध्ययन किए जाने की जरूरत है।

खेती-बाड़ी

सुरिंदर सूद

एनएएएस के रणनीतिक पत्र में कहा गया है कि ए2 दूध के उत्पादन में भारत को यूरोप के दुग्ध उत्पादक देशों की तुलना में बढ़त हासिल है। ऐसी स्थिति में भारत ए2 दूध को लेकर दुनिया भर में बढ़ती मांग को आसानी से पूरा कर सकता है।

हालांकि यह सच है कि देसी गाय का दूध ए2 किस्म वाला होने के दावे को वैज्ञानिक तौर पर पुष्ट किया जा चुका है। राष्ट्रीय कृषि विज्ञान अकादमी (एनएएएस) ने हाल ही में जारी रणनीति पत्र में इसे स्वीकार भी किया है। 'भारत में ए1 एवं ए2 दूध की पूर्ण क्षमता का दोहन' शीर्षक पत्र कहता है कि भारत में देसी गायों के साथ विदेशी सांडों के मेल से विकसित संकर नस्ल की गाय में भी विशुद्ध ए2 बीटा-केसीन के गुण पाए जाते हैं। संकर किस्म की गायों में ए1 प्रोटीन की मौजूदगी दुर्लभ होने के साथ ही नदारद रहती है।

एनएएएस का रणनीति पत्र 1,500 पशुओं के तुलनात्मक विश्लेषण के नतीजों पर आधारित है। करनाल स्थित नैशनल ब्यूरो ऑफ एनिमल जेनेटिक रिसोर्सेज ने इस अध्ययन के दौरान संकर किस्म की गायों को भी शामिल किया था। अध्ययन से पता चला कि भारत के 91 फीसदी देसी मवेशियों के दूध में केवल ए2 बीटा-केसीन ही होता है। बमुश्किल 0.09 फीसदी नमूनों में ही ए1 बीटा-केसीन के नाममात्र के निशान पाए गए। खास बात यह है कि किसी भी भारतीय मवेशी का दूध ए1 किस्म का नहीं था।

ए1 एवं ए2 किस्म के दूध के गुण एवं दोष के बारे में जागरूकता बढ़ रही है। न्यूजीलैंड, ऑस्ट्रेलिया एवं अमेरिका जैसे बड़े दुग्ध उत्पादक देशों में भी लोग ए1 दूध को लेकर फिक्रमंद हो रहे हैं। न्यूज़ीलैंड ने तो प्रजनन में इस्तेमाल होने वाले सांडों को ए1 एवं ए2 के तौर पर चिह्नित करना शुरू कर दिया है ताकि ए2 दूध देने वाली गायों को बढ़ावा मिले। ए2 कॉर्पोरेशन लिमिटेड नाम का एक कारोबारी घराना ए2 किस्म की गायों की पहचान एवं उनके दूध की बिक्री के लिए आगे आया है। उसने 'ए2' और 'ए2 मिल्क' को अपने ट्रेडमार्क के तौर पर पंजीकृत करा लिया है।

बहरहाल एनएएएस का यह रणनीतिक पत्र कहता है कि ए2 दूध के उत्पादन में भारत को यूरोप के दुग्ध उत्पादक देशों की तुलना में बढ़त हासिल है। ऐसी स्थिति में भारत ए2 दूध को लेकर दुनिया भर में बढ़ती मांग को आसानी से पूरा कर सकता है।

कानाफूसी

बदलाव का वक्त

यह मौसम बदलाव का मौसम प्रतीत हो रहा है। गत जुलाई में एक विधेयक पर मत विभाजन के दौरान कांग्रेस के पक्ष में मतदान करने वाले मध्य प्रदेश के भाजपा विधायक नारायण त्रिपाठी दोबारा भाजपा के साथ हो गए हैं। उनका कहना है कि उन्होंने कभी पार्टी छोड़ी ही नहीं। पूर्व मुख्यमंत्री शिवराज सिंह चौहान की गैरमौजूदगी में घर वापसी करने वाले त्रिपाठी ने कांग्रेस का साथ देते वक्त चौहान की जमकर आलोचना की थी। अब वह प्रदेश अध्यक्ष राकेश सिंह के नेतृत्व में वापस आ गए हैं। सिंह ने भी कहा है कि त्रिपाठी ने गलती से कांग्रेस के पक्ष में मतदान कर दिया था। और वह हमेशा से भाजपा में बने रहे। त्रिपाठी की बात करें तो बीते 15 वर्षों में वह पांच बार पार्टी बदल चुके हैं। सन 2003 में वह समाजवादी पार्टी के टिकट पर मैहर विधानसभा चुनाव जीते थे। 2013 में वह कांग्रेस में आ गए और लगातार दो बार विधायक बने। नवंबर 2018 में हुए चुनाव के ऐन पहले वह भाजपा में चले गए और चुनाव जीतने के बाद एक विधेयक पर कांग्रेस के पक्ष में वोट डाल दिया। अब कह रहे हैं कि वह औपचारिक रूप से पार्टी में वापस आ गए हैं। उधर, राजस्थान में भी कांग्रेस के एक विधायक भरत सिंह ने अपनी ही सरकार पर रिश्वतखोरी का आरोप लगाते हुए विधायक पद त्याग दिया। अनुमान लगाया जा रहा है कि वह पार्टी बदल सकते हैं।

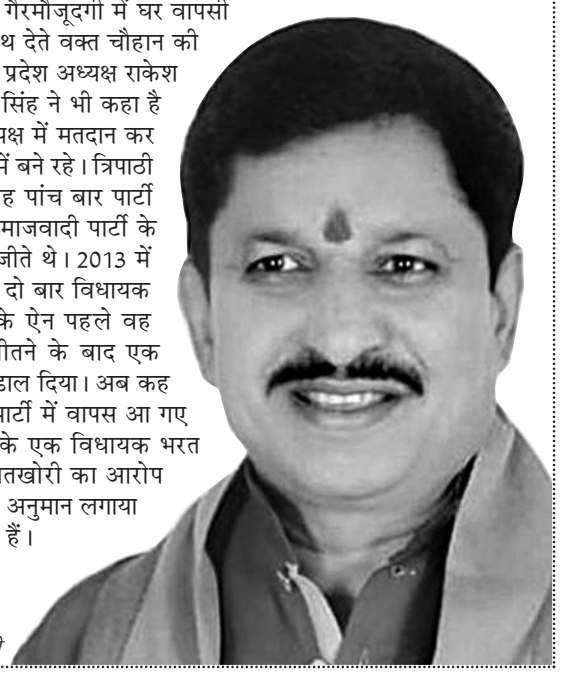

नारायण त्रिपाठी

आपका पक्ष

मुक्त अर्थव्यवस्था और निजीकरण

आजादी के बाद सरकार ने मिश्रित अर्थव्यवस्था को स्वीकार किया था ताकि देश में आर्थिक एवं सामाजिक विषमता को कम किया जा सके। उसने औद्योगिक नीतियों के तहत उद्योगों का स्वामित्व अपने पास ही रखा। लेकिन वर्ष 1991 तक सरकारी औद्योगिक इकाइयां गलत व्यवस्थापन एवं अकार्यक्षमता से घाटे में आ गई। इस वजह से नई औद्योगिक नीति 1991 के तहत सरकार ने कई उद्योगों का निजीकरण कर दिया। वर्ष 1991 के बाद से ही देश की अर्थव्यवस्था मुक्त अर्थव्यवस्था की ओर अग्रसर है। इंडेक्स ऑफ इकनॉमिक फ्रीडम 2018 में भारत को 184 देशों के बीच 130वां स्थान मिला है जो वर्ष 2017 में 143 था। देश को वर्ष 2018 में 100 अंक में से 54.5 अंक मिले जो यह दर्शाता है कि भारतीय अर्थव्यवस्था बाजार अर्थव्यवथा की ओर अग्रसर है। भविष्य में देश की रैंकिंग और ऊपर जाएगी क्योंकि वर्तमान सरकार ने अपने कई उद्योगों का निजीकरण करने का फैसला किया है। सरकार के इस फैसले का स्वागत किया गया है लेकिन इसकी आलोचना भी हो रही है। अगर सरकार धीरे-धीरे अपने सभी उद्योगों का निजीकरण कर देगी तो उन वस्तुओं की कीमतें बाजार की मांग एवं पूर्ति के हिसाब से तय होंगी जिससे वस्तु के दाम

सरकारी कंपनियों को घाटे से उबारने के लिए निजीकरण के अलावा अन्य विकल्प भी हों

में गिरावट तथा बढ़ोतरी होती रहेगी। इसका विपरीत असर मध्यम और निम्न वर्ग के लोगों पर पड़ेगा। विशेषज्ञों के अनुसार विकासशील देशों में उदारीकरण और मुक्त बाजार के दौर में लगातार अमीरी गरीबी की खाई की समस्या बढ़ती जा रही है जबकि आर्थिक एवं सामाजिक विषमता की गणना करने वाली ऑक्सफेम इंडेक्स में देश को वर्ष 2018 में 157 देशों के बीच 147वां स्थान मिला था। सरकार का राजकोषीय घाटा काफी अधिक है। इस दबाव के चलते सरकार ने निजीकरण का फैसला किया है। जो सरकारी कंपनियां घाटे में हैं उन्हें बंद करने या निजीकरण के अलावा कोई चारा भी नहीं बचता है।

निशांत महेश त्रिपाठी, नागपुर

आयकर दरों में बदलाव जरूरी

नरेंद्र मोदी सरकार के पहले कार्यकाल में सरकार ने 5 लाख रुपये तक की आय पर आयकर खत्म कर दिया लेकिन अगर आय 5 लाख 10 रुपये हो जाए तो उस पर ढाई लाख रुपये के हिसाब से आयकर की गणना होगी। यह बड़ा अजीब सा नियम बना। अगर देश की आर्थिक स्थिति ठीक करनी है तो कर योग्य आय और आयकर दरों को तर्कसंगत बनाने की आवश्यकता है। इसके अलावा चीन के उत्पादों पर पूरी तरह से रोक लगाने की जरूरत है। आयकर दरों में सुधार के लिए कर मुक्त आय की सीमा 4 लाख रुपये करनी चाहिए। इसके अलावा 6 लाख रुपये तक की आय में 5 प्रतिशत आयकर लगाना चाहिए। इसके बाद 10 लाख रुपये तक की आय में 10 प्रतिशत, 20 लाख रुपये तक की आय में 20 प्रतिशत तथा इसके बाद 25 से 30 प्रतिशत आयकर की दर निर्धारित करनी चाहिए। इसके साथ ही धारा 80 सी के तहत 2 लाख रुपये तक की जमा करने की छूट हो। इस प्रकार लोगों के पास खर्च करने के लिए पैसा होगा।

सुदर्शन गुप्ता, अलीगढ़

पाठक अपनी राय हमें इस पते पर भेज सकते हैं : संपादक, बिजनेस स्टैंडर्ड लिमिटेड, 4, बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली - 110002. आप हमें ईमेल भी कर सकते हैं : lettershindi@bsmail.in उस जगह का उल्लेख अवश्य करें, जहां से आप ईमेल कर रहे हैं।